रात्रिभोजन-महापाप

— मुनि भव्यदर्शनविजय

Meghart Colour Crafters, Bombay-13 • Phone: 492 19 64

सुकृत के सहभागी

- शेठ मोतीशा रीलीजीयस एन्ड चेरीटेबल ट्रस्ट - भायखला - बम्बई.
- किरणराज मांगीलालजी
- देवराजजी कालुरामजी
- भुरमल बनेचंदजी
- ललितकुमार भुरमलजी
- देवराज कालुरामजी
- अचलचंद प्रेमचंदजी
- न्यालचंदजी चमनाजी
- किरणराजजी मांगीलालजी
- मोहनलाल कपूरचंदजी
- डॉ. जीवराजजी जैन.
- चुनीलाल गंगारामजी
- शांतिलाल हजारीमलजी
- चंदनमलजी चेनमलजी
- वीरचंद पुनमचंदजी
- सुखराजजी दानाजी
- चंपालालजी ओटरमलजी
- चंचलबेन चुनीलालजी
- चंपालाल करमचंदजी
- केसरीमल हीराचंदजी
- रतनचंदजी जयंतीलालजी
- सरेमल भेराजी
- बाबुलालजी धनराजजी
- दीपचंद बापाजी
- हीराचंदजी लखमाजी
- बालचंद जुहारमलजी
- शांतिलाल बाबुलालजी
- सरेमल त्रिलोकचंदजी
- फेन्सीबेन चंदनमलजी
- शांतिलाल बाबुलालजी
- फुलचंदजी सरदारमलजी
- रूपचंदजी माणेकचंदजी
- बदामीबेन पुखराजजी
- सरसीबेन धनराजजी
- सुंदरबाइ हिंमतमलजी
- रतनबेन फुटरमलजी
- उदयराजजी झवेरचंदजी

गीव मी ओनली टु मिनिट्स

आजकल घर घर में रात्रिभोजन इतना फैल चूका है कि - **"रात्रिभोजन महापाप है"** इस शास्त्रसिध्द सत्य को मानने के लिए दिल तैयार नहि है।

मुझे कहने दो कि रात्रिभोजन केवल पाप ही नहि, महापाप है। क्योंकि उसमें असंख्य - अनंत जंतुओं की मौत है। दर्दकी बात है कि इतना न समझकर लोगोंने अपनी जिंदगीमें उस रात्रिभोजन को बहुत आसानी से अपना लिया है। हम भूल चूके हैं कि - रात्रिभोजनसे बरबादीका कौनसा खतरा है ? सिर्फ जैनधर्म की दृष्टि से हि नही अन्य आर्य धर्मों की दृष्टि से और विज्ञान के आविष्कार से भी यह सिध्द हो चूका है कि - रात्रिभोजन में अनगिनी जीवहिंसा है, आरोग्य की बरबादी है। धर्म का विनाश है।

जनता रात्रिभोजन के विषय में जैनधर्म का विधान समझेगी तो चौंक उठेगी ओह ! रात्रिभोजन में इतना पाप है ?

रात्रिभोजन के दोषों का संपूर्ण वर्णन खुद केवलज्ञानी भगवंत भी नहीं कर सकते है।

रात्रिभोजन के त्याग में न केवल आत्माकी हि सुरक्षा है, शरीरकी सुरक्षा भी उसमें निहित है। तन - मन और आत्मा इन तीनों की सुरक्षा का एवं भौतिक-आध्यात्मिक अनेक लाभों का होना निश्चित है।

मनुष्य का जीवन पशुजीवन नहि है। विवेकहीन पशु के अवतारमें दिन-रात खाया करते थे, उच्चमानव जन्म में भी वहि रफतार ? तब तो कहना पड़ेगा कि - पशुजीवन जाने पर भी पशुता न गइ !

आइये, **'रात्रिभोजनमहापाप'** नाँवकी इस पुस्तिका के माध्यम से रात्रिभोजन के पापको भिन्न भिन्न अभिगमों से समझने का प्रयत्न करें।

- भव्यदर्शन विजय

अनुवादक की कलम से....

यद्यपि आत्मा का मूलभूत स्वभाव अणाहारी अवस्था में रहने का है, परंतु जब तक आत्मा कर्म से आवृत है और आवृत होने से शरीरधारी है उसे अपने अस्तित्व को टिकाएँ रखनें के लिए आहार की आवश्यकता रहती है ।

माँ के गर्भ में आने के बाद सर्व प्रथम आत्मा आहार ही ग्रहण करती है और उसी आहार में से नवीन देह का निर्माण करती है । देह के पालन, पोषण और अस्तित्व के लिए आहार लेना ही पडता है ।

हाँ ! आहार मात्र अपनें देह का ही पोषक नहीं है, आहार अपनें विचार भी बनते है । सात्त्विक आहार से सात्त्विक विचार और तामसी आहार से तामसी विचार पैदा होते है ।

जीवन में धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आहार - संयम अत्यंत ही अनिवार्य है ।

जीवन के अस्तित्व को टिकाए रखनें के लिए आहार की आवश्यकता है, इसमें कोई दो मत नहीं है, परन्तु आहार के विषय में संयम और विवेक न हो तो यही आहार आत्मविकास में साधक और सहायक बनने के बजाय बाधक ही बनता है ।

किस प्रकार का आहार आत्मसाधना में सहायक बन सकता है इस संदर्भ में जैनदर्शन के धर्मग्रंथों में बहुत ही सुंदर मार्गदर्शन दिया गया है ।

आहार लेने के विषय में सभी परिचित होने के बावजूद भी आहार क्यों, कब, कितना, कैसे और किस प्रकार लेना चाहियें ? इन बातों से लगभग लोग अपरिचित ही नजर आते है ।

आहार - संयम के विषय में विस्तृत जानकारी के अभाव के कारण ही ग्रहण किया गया आहार लाभ के बदलें शारीरिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हानि कारक सिद्ध हो जाता है ।

भोजन के संदर्भ में आयुर्वेद में बहुत ही थोडे शब्दों में बहुत ही महत्त्व की बात कह दी है -

'काले भोजनम् अकाले अभोजनम्'

भोजन उचित समय में करना चाहियें, अनुचित समय में नहीं ।

उचित समय में किया गया भोजन लाभदायक सिद्ध होता है, जब कि अनुचित समय में किया गया भोजन लाभ के बजाय नुकसान ही करता है।

- काल की अपेक्षा से दिन में भोजन की छूट है, जब कि रात्रि में भोजन का निषेध है ।

शरीर के अस्तित्व को टिकाएँ रखनें के लिए भोजन करना ही पडे तो वह भोजन दिन में ही होना चाहियें - रात्रि में नहीं ।

शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक इन तीनों दृष्टि से रात्रिभोजन एकांत हानिकारक है ।

- रात्रि में भोजन करनें से पाचन तंत्र असंतुलित होता हैं, अतः स्वास्थ्य की हानि होती है ।

- शारीरिक स्वास्थ्य बिगडनें से मन की प्रसन्नता भी बिगडती हैं, अतः मानसिक दृष्टि से भी नुकसान होता है ।

- रात्रिभोजन में जीव-हिंसा आदि होने से आध्यात्मिक दृष्टि से भी रात्रि-भोजन हानिकारक है ।

सूर्य की गर्मी हमारे पाचन तंत्र को मजबूत करती है, और आहार को पचने में भी सहायक बनती है, जब कि रात्रि के अंधकार में पाचन की प्रक्रिया भी मंद हो जाती है ।

सूर्य की गर्मी सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति में बाधक हैं, जबकि सूर्य की गर्मी के अभाव में असंख्य सूक्ष्म जीवों की सहज उत्पत्ति हो जाती हैं, रात्रिभोजन करने से उन असंख्य सूक्ष्म जीवों की हिंसा का पाप लगता है ।

अनेक अनेक दृष्टिकोणों से हानिकारक इस रात्रिभोजन के संदर्भ में जितना लिखा जाय उतना कम है ।

परम पूज्य शासन प्रभावक आचार्यदेव श्रीमद् विजय मित्रानंद सूरीश्वरजी म.सा. के सफल मार्गदर्शनानुसार आत्मीय मुनिश्री भव्यदर्शन विजयजी म.

ने रात्रिभोजन के अनर्थों को बतलानें वाली इस दिग्दर्शिका (Guide Book) का निर्माण कर बहुत ही सुंदर प्रयास किया है ।

Guide Book दिखनें में तो छोटी सी होती हैं, परन्तु उसमें थोडे शब्दों में अधिक मार्गदर्शन होता हैं, बस, इसी प्रकार अत्यंत ही अनर्थकारी इस रात्रिभोजन के पाप से भावुक जीवों को बचानें के लिए इस छोटी सी किंतु अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण इस Guide Book का निर्माण कर मुनिश्री ने सफल प्रयास किया है ।

मुनिश्री की आत्मीयता को ध्यान में रखकर, हिन्दी भाषी पाठकों को भी इस संस्करण का लाभ मिल सके, इसी शुभाशय को ध्यान में रखकर मैंने इस गुजराती - संस्करण का हिन्दी भावानुवाद किया है ।

इस संस्करण का पठन - पाठन कर हिन्दी भाषी वर्ग भी रात्रिभोजन की अनर्थता को ध्यान में रखकर रात्रिभोजन के महापाप से बचनें के लिए यथाशक्य प्रयत्न करेगी तो मैं अपना प्रयास सफल - सार्थक समझूंगा ।

ऋषभदेव - केशरीयाजी तीर्थ,
दिनांक १-१२-९१.

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवरश्री
भद्रंकर विजयजी गणिवर्य
पादपद्मरेणु
रत्नसेन विजय ।

रात्रिभोजन केवलज्ञानी की दृष्टि में -

अन्य दर्शनकारों का ज्ञान सीमित है । विज्ञान का संशोधन अभी अपूर्ण ही है परंतु सर्वज्ञ का ज्ञान क्षति रहित एवं सर्वांग संपूर्ण है । उस विशिष्ट ज्ञान के धारक को किसी भी वस्तु के ज्ञान, बोध व दर्शन के लिए - किसी विज्ञान भवन की आवश्यकता नहीं है, किसी यांत्रिक साधनों की आवश्यकता नहीं है, किसी माइक्रोस्कोप या बाइनोक्युलर की आवश्यकता नहीं है । उसके संशोधन के पीछे वर्षों बितानें की आवश्यकता नहीं है और नहीं आवश्यकता है धन को बर्बाद करने की ।

बिना किसी विज्ञान भवन, लेबोरेटरी या दुर्बिन के सर्वज्ञ भगवंतों ने स्पष्ट कह दिया है कि 'रात्रिभोजन में असंख्य - अनंत जीवों की विराधना होने से महापाप का कारण है, अतः रात्रिभोजन का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

संशोधन के अंत में भी वैज्ञानिकों को अपनी बात प्रगट करने में हिचकिचाहट का अनुभव होता है, शायद मेरा सिद्धांत गलत सिद्ध हो गया तो - मात्र इस भय के कारण । परन्तु सर्वज्ञ भगवंतो को अपनें ज्ञान बल से देखी गई बात को प्रगट करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है, क्योंकि उनकी बात को कोइ मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता ।

केवलज्ञानी तो यहाँ तक बतलाते हैं कि 'दिन में भी गाढ अंधेरे में अथवा संकुचित मुख वाले बर्तन में भोजन करने में रात्रिभोजन का दोष लगता है।

रात्रिभोजन - जैनदर्शन के आधार पर :-

'वासरे च रजन्यां च, यः खादन्नेव तिष्ठति ।
शृंगपुच्छपरिभ्रष्टः, स्पष्टं स पशुरेव हि ॥ योगशास्त्र ३/६२

दिन और रात जो खाया करता है वह वास्तव में सिंग व पुच्छ बिना का पशु ही है ।'

रात्रि भोजन करनेवाले को मुर्ख की उपमा :-

'ये वासरं परित्यज्य, रजन्यामेव भुञ्जते ।

ते परित्यज्य माणिक्यं, काचमाददते जडाः ॥ योगशास्त्र ३/६५

जो मनुष्य दिन को छोडकर रात्रि में खाता हैं, वह मनुष्य वास्तव में माणिक्य को छोडकर कांच ग्रहण करने वाला मुर्ख ही है ।

वासरे सति ये श्रेयस्-काम्यया निशि भुञ्जते ।

ते वपन्त्यूषरे क्षेत्रे, शालीन् सत्यपि पल्वले ॥ योगशास्त्र - ३/६६

दिन विद्यमान होने पर भी जो कल्याण की इच्छा से रात्रिभोजन करता है, वह रस युक्त भूमि को छोडकर ऊषर (बंजर) भूमि में चावल बोने की मुर्खता करता है ।

संसजज्जीवसंघातं, भुञ्जाना निशिभोजनम् ।

राक्षसेभ्यो विशिष्यन्ते, मूढात्मानः कथं नु ते ?॥ योगशास्त्र ३/६१

जिस भोजन में जीवों का मोटा समूह हैं, ऐसे रात्रिभोजन करने वाले जीवों को राक्षस से अलग कैसे कर सकते हैं ? (अर्थात् रात्रिभोजन राक्षसो का भोजन है)

अन्नं प्रेतपिशाचाद्यैः संचरद्भिर्निरङ्कुशैः ।

उच्छिष्टं क्रियते यत्र, तत्र नाद्यादिनात्यये ॥ योग० ३/४८

रात्रि में निरंकुश होकर घूमने वाले प्रेत-पिशाचादि अन्न को झूठा कर देते है, अतः सूर्यास्त बाद भोजन नहीं करना चाहिये ।

'घोरान्धकाररुद्धाक्षैः पतन्तो यत्र जन्तवः।

नैव भोज्ये निरीक्ष्यन्ते, तत्र भुञ्जीत को निशि ?॥ योग० ३-५७

घोर अंधेरे के कारण रुद्ध नेत्रों से भोजन में गिरने वाले जीवों को देख नहीं सकते है, ऐसे रात्रि के समय में कौन भोजन करेगा ?

'नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजन्तूनि निश्चयात् प्रासूकान्यपि ।

अप्युद्यत् - केवलज्ञानैर्नादृतं तन्निशाशनम्' ॥ योग० ३/५३

रात्रि के समय में सूक्ष्मजंतु को देख नहीं सकते है, अतः जीवरहित पदार्थ भी रात्रि में न खाएं।

(क्योंकि उन पदार्थों में जीव न होने पर भी रात्रि में घूमते हुए जीव भोजन

में गिरने से उन जीवों की हिंसा हो जाती है । केवलज्ञानी (जिन्हें अपनें ज्ञान में सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव दिखाई देते है) ने भी रात्रिभोजन का आदर नहीं किया हैं, बल्कि निषेध ही किया है ।

निशीथ भाष्य में कहा हैं - 'दिन में बनी हुई निर्जीव - अचित्त लड्डू आदि वस्तु में भी रात्रि में कुंथु - काई आदि जंतु देख नहीं सकते है, अतः केवलज्ञानी भी रात्रिभोजन का त्याग करते है । यद्यपि दीपक व लाईट के प्रकाश में चिंटी आदि जीव दिखाई देते हैं, फिर भी उसमें (दूसरे जीवों का विनाश होने से) मूलव्रत की विराधना होने से रात्रिभोजन अनाचीर्ण है - त्याज्य है ।

धर्मविन्नैव भुञ्जीत, कदाचन दिनात्यये ।

बाह्या अपि निशाभोज्यं, यदभोज्यं प्रचक्षते ॥ योग० ३/५४

जैन धर्म के ज्ञाता जन को दिन अस्त के बाद कभी भोजन नहीं करना चाहियें - क्योंकि इतर दर्शनकार भी रात्रिभोजन को अभोजन गिनते है । (देखे - यजुर्वेद श्लोक नं १९)

हन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचिरपायतः ।

अतो नक्तं न भोक्तव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ (आयुर्वेद) योग० ३/६०

अपनें शरीर में रहा हुआ हृदय कमल (निम्न मुखवाला) और नाभिकमल (ऊर्ध्व मुखवाला), ये दोनों कमल सूर्यास्त के साथ संकुचित हो जाते हैं, अतः रात्रिभोजन में सूक्ष्म जीवों का भक्षण होने से रात्रिभोजन नहीं करना चाहियें।

'श्रूयते ह्यन्यशपथानन्नादृत्यैव लक्ष्मणः ।

निशाभोजनशपथं, कारितो वनमालया ॥ योग० ३/६८

ऐसा सुना जाता हैं कि वनमाला ने लक्ष्मण को अन्य सोगंध न दिलाकर ''रात्रिभोजन का पाप लगे'' ऐसा सोगंध दिलाया था ।

रामायण का प्रसंग

राम और सीता के साथ लक्ष्मण भी दक्षिणापथ की ओर गए - वहाँ

कुबरनगर में महीधर राजा की पुत्री वनमाला के साथ लक्ष्मण ने लग्न किया। राम के साथ प्रयाण करते समय लक्ष्मण वनमाला को वहीं छोड़ता है ।

वनमाला ने सोचा, 'लक्ष्मणजी शायद मुझे लेने के लिए वापस न आए तो ? अतः वापस आने के सोगंध दिलाती है ।

लक्ष्मण जी ने कहा 'हे प्रिये ! रामचन्द्र जी जिस देश में जाने की भावना रखते है, उस देश मे छोडकर तुझे दर्शन देने के लिए न आऊं तो प्राणाति पात आदि पाप करने वाले की जो गति हो वह गति मेरी हो ।'

वनमाला को इस सोगंद से संतोष नहीं हुआ, अतः उसने कहा 'यदि आप रात्रिभोजन करने वाले की गति की सोगंद लो तो में आपको अनुमति दे सकती हूँ..... और उसी समय लक्ष्मणजी ने वह सोगंद स्वीकार की, तभी वनमाला ने उन्हें अनुमति दी....और लक्ष्मणजी ने रामचन्द्रजी के साथ आगे प्रयाण किया ।

यहा समझने की वस्तु यह है कि प्रणातिपात आदि पापों के आचरण से जो गति होती हैं, उससे भी अधिक भयंकर गति रात्रिभोजन करने वाले की होती है अर्थात् प्राणातिपात आदि से भी रात्रिभोजन का पाप अधिक भयंकर है ।

अह्नो मुखेऽवसाने च, यो द्वे द्वे घटिके त्यजन् ।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनम् ॥ योग॰ ३/६३

रात्रिभोजन के दोष का ज्ञाता आत्मा सूर्योदय व सूर्यास्त की दो - दो घडी छोडकर भोजन करता है । (सूर्योदय के बाद दो घडी और सूर्यास्त पूर्व दो घडी छोडकर) वह पुण्य का भाजन बनता है अर्थात् पुण्यशाली है ।

करोति विरतिं धन्यो यः, सदा निशि भोजनात् ।
सोऽर्धं पुरुषायुषस्य, स्यादवश्यमुपोषितः॥ योग॰ ३/६९

जो भव्यात्मा हमेंशा के लिए रात्रिभोजन का त्याग करता हैं, वह वास्तव में धन्य है । रात्रिभोजन के त्यागी को आधी जिंदगी के उपवास का लाभ मिलता है ।

रात्रिभोजन से तात्कालिक नुकसान

मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याद् जलोदरम् ।
कुरुते मक्षिका वान्तिं, कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥
कण्टको दारुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम् ।
व्यंजनान्तर्निपतितस्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥
विलग्नश्च गले बालः, स्वरभंगाय जायते ।
इत्यादयो दृष्टदोषाः, सर्वेषां निशिभोजने ॥ योग॰ ३/५०-५१-५२

यदि रात्रिभोजन में चिंटी खाने में आ जाय तो बुद्धि का नाश होता है, जूं खाने में आ जाय तो जलोदर होता हैं, मक्खी आ जाय तो उल्टी होती हैं, मकडी आ जाय तो कोढ रोग हो जाता है । लकडी का टूकडा आ जाय तो गले में भयंकर वेदना होती है । शाक में विच्छु आ जाय तो तलवें को विंध देता है और गले में बाल आ जायतो स्वर भंग हो जाता है - गला दब जाता है ।

इस प्रकार रात्रिभोजन में अनेक प्रत्यक्ष रोग व दोष रहे हुए है ।

रात्रिभोजन करने वाले की परलोक में दुर्गति

उलूक - काक - मार्जार, गृध्र - शंबर - शूकराः ।
अहिवृश्चिकगोधाश्च, जायन्ते रात्रिभोजनात् ॥ योग॰ ३/६७

रात्रिभोजन करने से मनुष्य उल्लू , कौआ, बिल्ली, गिद्ध, सावर, सुंअर, सांप, विच्छु तथ गोध आदि के अवतार पाता हैं (ये अवतार ऐसे है कि जहाँ रात्रिभोजन का पाप चालू रहता है । अतः नए - नए पाप - बंध एवं जन्म - मरण की परंपरा को बढानें वाले रात्रिभोजन के पाप का अवश्य त्याग करना चहियें ।

रात्रिभोजनत्यागे, ये गुणाः परितोऽपि तान् ।
न सर्वज्ञादृते कश्चिदपरो वक्तुमीश्वरः ॥ योग॰ ३/७०

रात्रिभोजन के त्याग में जो गुण रहे हुए हैं उन्हें सर्वज्ञ भगवंत को छोडकर

अन्य कोई कहने में समर्थ नहीं है ।

बहुदोस आउ थोवं, तह पुण पभणेमि किंपि दोसस्स ।
भवछन्नुइ हणइ जीवा, सरसोसे इक्क तं पावं ॥
सरसोसे अट्ठोत्तर - भवम्मि जीवो करेइ जं पावं ।
तं पावं दवइक्के, इक्कुत्तरभवं दवं दिंति ॥
इक्कुत्तरभवम्मि दवे, जं पावं समुप्पज्जइ जीवो ।
कुवणिज्जे तं पावं, भवसयछिहुंआल कुकम्मे ॥
जं कुकम्मे पावं, तं पावं होइ आलमेगं च ।
भवसयएगावन्ने, आलं तं गमणपरइत्थी ॥
नव्वाणुसय (नव नवइ) भवपरइत्थी गमणेणं होइ जं पावं ।
तं पावं रयणीए, भोयणकरणेण जीवाणं ॥

- रत्नसंचय गाथा ४४७ - ४५१

रात्रिभोजन के बहुत से दोष बतलाने के है परन्तु आयुष्य परिमित है (अर्थात् आयुष्य पूरा हो जाय फिर भी रात्रिभोजन के दोष कहना पूरे न हो, इतने दोष रात्रिभोजन में है) तो भी रात्रिभोजन के कुछ दोष मैं कहता हूँ।

छिन्नु भव तक कोई मच्छीमार मछलियों को मारे, उतना पाप एक सरोवर को सूकाने से होता है । एक सौ आठ भव तक सरोवर सूकाने से जितने पाप का बंध होता है, उतना पाप एक दावानल सुलगाने से होता है । एक सौ एक भव तक दावानल सुलगाने से जो पाप होता है, उतना पाप एक कुवाणिज्य करने से होता है । ऐसे एक सौ चुमालीस भवों तक कुवाणिज्य करने से जो पाप होता है, उतना पाप एक बार झूठा अभ्याख्यान (आरोप) देने से होता है । एक सौ एकावन भव तक झूठा आरोप देने से जो पाप लगता है, उतना पाप एक बार परस्त्रीगमन से होता है, और एक सौ निन्यानवें (निन्यानवें) भव तक परस्त्रीगमन करने से जो पाप होता है, उतना पाप एक बार रात्रिभोजन से होता है ।

आगे बढकर वे कहते हैं -

पाणाइ दुगुण साइमे, साइमतिगुणेण खाइमे होइ ।
खाइमतिगुणं असणे, राइभोए मुणेयव्वं ॥ रत्नसंचय - ४५२

रात्रि में पानी पीने से जो पाप लगता हैं उससे दुगुना पाप स्वादिम से तथा स्वादिम से तीन गुणा पाप खादिम से व खादिम से तीन गुणा पाप अशन (भोजन) करने से होता है - ऐसा समझना चाहियें ।

जं चेव राइभोयणे, ते दोसा अंधयारंम्मि ।
जं चेव अंधयारे, ते दोसा संकडमुहम्मि ॥ रत्नसंचय - ४५३

रात्रिभोजन में जो दोष लगते हैं, वे दोष दिन में भी अंधेरे में भोजन करने से लगते हैं और जो दोष अंधेरे में भोजन करने से लगते हैं, वे ही दोष संकुचित मुखवाले बर्तन में खाने से लगते है ।

नयणे न दीसइ जीवा, रयणीए अंधयारम्मि ।
रयणीए वि निष्फन्नं, दिणभुत्तं रोइभोयणं ॥ रत्नसंचय ४५४

रात्रि तथा अंधेरे में सूक्ष्म जीवों को देख नहीं सकते हैं अतः रात्रि में बनाया गया दिन में खाए तो भी रात्रिभोजन तुल्य है ।

इतनी सूक्ष्म बातें जैन शासन सिवाय कहाँ जानने को मिलेगी ? जिसे यह शासन मिला हैं, वह वास्तव में भाग्यशाली है.... परंतु ऐसा उत्तम शासन मिलने के बाद भी यदि ऐसे बडे पापों का सेवन करते ही रहे तो उसे क्या कहना ? ❑❑

भोजन विधि :-

श्रावक (गृहस्थ) को भोजन की इच्छा हो तब योग्य समय में लोलुपता छोडकर पाचनशक्ति के अनुरूप हितकारी और प्रमाणोपेत भोजन करना चाहियें ।

हे जीभ ! तुम भोजन और बोलने में सावधानी रखना, क्यों कि अति भोजन और वाचालता दोनों मृत्यु के लिए होती है ।

भूख बिना खाया गया अमृत भी विष रूप बन जाता है। भूख का समय बीतने पर देर से खाने से भोजन पर द्वेष होता है। शरीर नष्ट होता है।

जठराग्नि शांत हो जाने के बाद भोजन करने से क्या फायदा ? सात्म्य और प्रकृति के अनुकूल भोजन करना चाहियें।

माता, पिता, बालक, गर्भवती स्त्री, वृद्ध और नौकर आदि को भोजन कराने के बाद ही सुज्ञ और धर्मज्ञ व्यक्ति को भोजन करना चाहियें।

अकाल समय में भोजन करना शास्त्र - निषिद्ध है, महादोष व महापाप का कारण है।

विवेक विलास ग्रंथ में कहा है कि - ऊषा काल, संध्या काल, रात्रि में, भोजन की निंदा करते करते चलते हुए, बाए पैर पर हाथ रखकर, बाए हाथ में खाने की वस्तु लेकर, खुले आकाश में, अंधेरे में, वृक्ष के नीचे तथा तर्जनी अंगुली को ऊंची रखकर भोजन नहीं करना चाहियें।

हाथ - पैर धोए बिना, नग्नावस्था में, मलीन वस्त्र पहिन कर, भीगे वस्त्र को सिर पर लपेट कर तथा बाए हाथ से थाली उठाकर कभी भोजन नहीं करना चाहियें।

अपवित्र वस्तु को लालच से जुते पहिनकर व्यग्रचित्त से जमीन अथवा पलंग पर बैठकर विदिशा व दक्षिण दिशा में मुख करके, छोटे आसन पर बैठकर भोजन नहीं करना चाहियें। चांडाल अथवा धर्मभ्रष्ट लोगों के देखते हुए तथा टूटे हुए व मलीन भाजन में भोजन नहीं करना चाहियें।

भोजन किसकी ओर से आया, उसे जाने बिना भोजन न करें। दूसरी बार गर्म किया गया भोजन न करें। भोजन करते समय चब - चब की ध्वनि व मुख को विकृत न करें।

इष्टदेव के स्मरण पूर्वक समान, विशाल व मध्यम ऊंचाई के आसन पर बैठ कर मौसी, माता, बहिन अथवा पत्नी द्वारा आदर पूर्वक पकाया गया भोजन करना चाहियें।

भोजन करके निवृत्त बनें पवित्र पुरुषों के द्वारा पिरसा हुआ तथा घर

के सभी लोगों के भोजन करने के बाद भोजन करना चाहियें। भोजन समय आए हुए बंधु आदि को भोजन कराना चाहियें।

सुपात्र में दान देकर, अथवा परमश्रध्दा से सुपात्र का स्मरण करके भोजन करना चाहियें।

इस जगत् में अपना पेट तो कौन नहीं भरता है ? ऐसे स्वार्थी नराधमों से क्या मतलब है ? जो अनेक जीवों का आधार बनता है, वही पुरुष, पुरुष कहलाता है।

अतिथि को भक्ति से, अर्थीजन को शक्ति अनुसार व दुःखीजनों को अनुकंपा से योग्यरीति से दान देकर उत्तम पुरुषों को भोजन करना चाहियें।

सूर्यनाडी बहती हो तब मौन पूर्वक, दृढ़ार बैठकर खाने की वस्तु सुंघकर, दृष्टिदोष से रहित तथा खराब स्वाद - स्वादरहित व शास्त्र निषिद्ध वस्तु का त्यागकर विकथारहित होकर भोजन करना चाहियें।

रात्रिभोजन - जैनेतर (अजैन) दर्शन की दृष्टि में...

परमोत्कृष्ट श्री जिनशासन जितनी सूक्ष्मता भले ही उन दर्शन में न हो.. फिर भी रात्रिभोजन में असंख्य जीवों की हिंसा का स्वीकार कर उसे महापाप तो कहते ही है। रात्रिभोजन को वे नरक का नेशनल हाईवे National Highway No.1 गिनते हैं।

रात्रिभोजन करने वाले के तप - जप - तीर्थयात्रादि सत्कार्य निष्फल जाते हैं - यह बात स्पष्टतया बतलाते है। तर्क से भी रात्रिभोजन के पाप को सिद्ध करते है।

भले ही आज उनके धर्मगुरु उन्हें सत्य बात की जानकारी न देकर अंधेरे में रखते होंगें, परन्तु इतने मात्र से रात्रिभोजन पाप मिटकर कर्त्तव्य नहीं बन जाता है।

लगभग सभी आस्तिक दर्शनकार रात्रिभोजन को पाप गिनते है और उसका त्याग करने की बात करते है और उसके त्याग का फल देवलोक

बतलाते है । रात्रि भोजन के त्यागी को वे एक मास में पंद्रह उपवास का फल बतलाते है ।

रात्रिभोजन - जैनेतर ग्रंथ के आधार पर

जैनेतर ग्रंथो में रात्रिभोजन के लिए क्या लिखा हैं - उसे देखें ।

रात्रि भोजन अर्थात् नरक का नेशनल हाइवें नं. १

चत्त्वारो नरकद्वारा, प्रथमं रात्रिभोजनम् ।

परस्त्रीगमनं चैव, सन्धानानन्तकायिके ॥ पद्मपुराण - प्रभासखंड ।

नरक के चार द्वार हैं । उसमें पहला रात्रिभोजन, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा संधान - आचार और चोथा अनंतकाय का भक्षण ।

(जैनेतर ग्रंथ में भी रात्रिभोजन के साथ ही आचार व अनंतकाय का भी स्पष्ट निषेध देखने को मिलता है, परन्तु रसना के लोलुपी व खाने - पीने के शोखीन शास्त्र की बात की आँख मिचौती ही करते है और उनके धर्म गुरु भी हिन्दु धर्म के लोगों को यह बात नहीं समझाते है ।... क्योंकि वे स्वयं उस पाप से मुक्त नहीं है ।

वैदिक दर्शन :-

मद्यमांसाशनं रात्रौ - भोजनं कंदभक्षणम् ।

ये कुर्वन्ति वृथास्तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ - महाभारत (ऋषीश्वर भारत)

जो मदिरा, मांस, रात्रिभोजन और कंदमूल का भक्षण करते है, उनके तीर्थयात्रा, जप, तप आदि अनुष्ठान निष्फल जाते है ।

अस्तङ्गते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते ।

अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेय महर्षिणा ॥ - मार्कण्डेय पुराण

सूर्यास्त के बाद जल पीना रक्त पीने के बराबर है और भोजन करना मांस खाने के बराबर हैं - यह बात मार्कण्डेयऋषि बतलाते है ।

मृते स्वजनमात्रेऽपि सूतकं जायते किल ।

अस्तंगते दिवानाथे भोजनं किमु क्रियते ?

स्वजन - स्नेही की मृत्यु होने पर मनुष्य को सूतक लगता हैं तो फिर सूर्य के अस्त होने पर भोजन कैसे कर सकते हैं ? अर्थात् सूर्यास्त के बाद रात्रिभोजन सर्वथा वर्ज्य हैं । (याद रखें कि ये विधान हिन्दु ग्रंथ के है सर्वज्ञ कथित जैन धर्म के नहीं है ।)

आगे बढकर बतलाते है कि -

मद्यमांसाशनं रात्रौ - भोजनं कंदभक्षणम् ।

भक्षणात् नरकं याति, वर्जनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥

मदिरा, मांस, रात्रिभोजन और कंदमूल को जो भक्षण करता हैं, वह नरक में जाता है और जो उसका त्याग करता है, वह स्वर्ग में जाता है ।

रात्रि में कौन खाता है ?

देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्ने, मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा ।

अपराह्ने तु पितृभिः, सायाह्ने दैत्यदानवैः ॥

संध्यायां यक्षरक्षोभिः, सदा भुक्तं कुलोद्वहैः ।

सर्वं वेलां व्यतिक्रम्य, रात्रौ भुक्तमभोजनम् ॥

यजुर्वेद आह्निक श्लोक २४ -१९

हे युधिष्ठिर ! देवता हमेंशा दिन के प्रथम प्रहर में भोजन किए हुए है। ऋषि - मुनि दिन के दूसरे प्रहर में, पिता आदि दिन के तीसरे प्रहर में और दैत्य (दानव) यक्ष तथा राक्षस संध्या समय भोजन किए हुए है । इन देवता आदि के भोजन समय का उल्लंघन कर जो रात्रिभोजन करते हैं - वह वास्तव में अभोजन हैं अर्थात् खराब भोजन है ।

रात्रि भोजन के त्यागी को लाभ

ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः ।

तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥

जो पुण्यात्मा रात्रि में समस्त आहार - पानी का त्याग करते है, उन्हें महिनें में पंद्रह उपवास का लाभ मिलता है ।

नोदकमपि पातव्यं, रात्रावत्र युधिष्ठिर ! ।

तपस्विना विशेषेण, गृहिणा च विवेकिना ॥

- मार्कण्डपुराण अ. ३० श्लोक २२

हे युधिष्ठिर !विशेषकर तपस्वी और विवेकी गृहस्थों को रात्रि में पानी भी नहीं पीना चाहियें। (पानी का भी निषेध हैं तो भोजन का निषेध स्वतः हो जाता है)

सूर्य की सच्ची पूजा कब ?

पयोदपटलस्थेन, नाश्नन्ति रविमण्डले ।

अस्तं गते तु भुञ्जाना, अहो भानोः सुसेवकाः ॥

सूर्यमंडल जब बादलों से घिर जाता है, उस समय जो भोजन नहीं करते है, वे यदि सूर्यास्त के बाद भी भोजन करते है तो ऐसे सूर्य के उपासकों को धन्यवाद है !... अर्थात् वास्तव में वे सूर्य की सच्ची उपासना नहीं करते, बल्कि उपासना का मात्र ढोंग ही करते है ।

त्वया सर्वमिदं व्याप्तं, ध्येयोऽसि जगतां रवेः ।

त्वयि चास्तमिते देव ! आपो रुधिरमुच्यते ॥

कपोलस्तोत्र श्लो - २५ स्कंदपुराण

हे सूर्य ! तुझ से यह सकल जगत् व्याप्त है और तीनों जगत् के लिए तुम ध्यान करने योग्य हो अतः हे देव ! तुम्हारें अस्त होने के बाद पानी भी रक्त के बराबर गिना जाता हैं (अर्थात् रात्रि में पानी का उपयोग भी निषिध्द है ।)

नक्तं न भोजयेयस्तु, चातुर्मास्ये विशेषतः ।

सर्वकामानवाप्नोति, इह लोके परत्र च ॥ योगवाशिष्ठ पूवार्ध श्लो १०८

जो आत्मा रात्रि भोजन नहीं करती है और चातुर्मास में विशेषकर रात्रि - भोजन का त्याग करती है उसके इस भव और पर भव में समस्त मनोरथ पूर्ण होते है ।

(सामान्य दिनों में पाप नहीं करना और चातुर्मास में विशेषकर पाप का त्याग कर आराधना करना, यह बात अन्य दर्शनकार भी मानते है । जैन

दर्शन में कहा है कि चातुर्मास काल में जीवोत्पत्ति विशेष होने से विशेष अभिग्रह ग्रहण करने चाहियें) ।

एकभक्ताशनान्नित्य - मग्निहोत्रफलं लभेत् ।

अनस्तभोजनो नित्यं, तीर्थयात्राफलं भवेत् ॥

स्कन्द पुराण - स्कंध ७ अ. १७ श्लोक - २३५

जो मनुष्य हमेंशा एक बार भोजन करता हैं, वह अग्निहोत्र का फल पाता है और जो मनुष्य हमेंशा सूर्यास्त पूर्व ही भोजन करता हैं, उसे तीर्थयात्रा का फल घर बैठे प्राप्त हो जाता है ।

(रात्रि भोजन नहीं करने वाले को प्रति दिन तीर्थयात्रा का फल मिलता है - यह बात अन्यदर्शनकार भी बतलाते है, जबकि आज कई जैन तीर्थयात्रा में भी रात्रिभोजन नहीं छोडते है ।)

चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते, रात्रिभोज्यं करोति यः ।

तस्य शुध्दिर्न विद्येत, चान्द्रायणशतैरपि ॥ ऋषीश्वरभारत - वैदिक दर्शन

चातुर्मास में भी जो रात्रिभोजन करता हैं, उसके पाप की शुध्दि सैकडों चान्द्रायण - तप से भी नहीं होती है ।

यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुंधराम् ।

एकस्य जीवितं दद्यात्, न च तुल्यं युधिष्ठिर ! ॥ महाभारत

हे युधिष्ठिर ! एक मनुष्य सोने के मेरु पर्वत या संपूर्ण पृथ्वी का दान करता है और दूसरा मनुष्य एक प्राणी को जीवन (अभयदान) देता है, उन दोनो की कभी समानता नहीं हो सकती, बल्कि अभयदान बढ जाता है ।

अहिंसा का फल

दीर्घमायुः परं रूपमारोग्यं श्लाघनीयता ।

अहिंसायाः फलं सर्वं, किमन्यत् कामदैव सा ॥ योगशास्त्र ७.२

दीर्घ आयुष्य, श्रेष्ठरूप, आरोग्य और प्रशंसा आदि अहिंसा के फल हैं, ज्यादा क्या कहना ? मनोवांछित फल देने के लिए अहिंसा कामधेनु समान है ।

रात्रिभोजन - डॉक्टर / वैद्य की दृष्टि में -

वह प्राचीन सुभाषित याद ही होगा ? **"पेट को नरम, पैर को गर्म और सिर को रखो ठंडा, फिर जब आवे डॉक्टर, तब उसको मारो डंडा"** अर्थात् जो पेट को नर्म रखता है, मस्तक को ठंडा रखता हैं और पैर को गर्म रखता हैं, उसे कभी डॉक्टर की शरण में जाना नहीं पडता है ।

आज हॉस्पीटलें बढी हैं - इस का मुख्य कारण बिगडी हुई आहार - व्यवस्था ही है ।... आज पेट को नरम - Light रखने के बजाय Light करने के बजाय टाइट Tight करने लग गए है... इस कारण सुस्ती आती है, जिससे पैर गर्म और सिर ठंडा कहाँ से रहे ?

तीनों बातों में हम उल्टी दिशा की ओर ही प्रगति कर रहे हैं ।

अति आहार की तरह रात्रि आहार भी बिमारी का उद्गम स्थान है । वैद्यों का स्पष्ट फरमान है कि रात्रि में सोने से पूर्व ३-४ घँटे पहले ही भोजन करना चाहियें। जिससे वह भोजन आराम से पच जाय । सर्दी आदि विशेष रोग भी रात्रि में ही विशेष हमला करते है ।

रात्रि में पाचन तंत्र मंद हो जाता है, जिससे पेट बिगडता है पेट के कारण आँख..कान..नाक...सिर आदि की बिमारियाँ आने में भी देर नहीं लगती है ।

सूर्य के प्रकाश में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है - सूर्य का प्रकाश सूक्ष्म जीवों के लिए अवरोधक तत्त्व है ।

विदेश में बडें डाक्टर भी अमुक मेजर ओपरेशन दिन में ही करते है।

भोजन पचने के लिए अनिवार्य आक्सीजन तत्त्व सूर्य की उपस्थिति में ही मिलता है ।

रात्रि में पाचन तंत्र का कमल बंद हो जाता है जो सूर्योदय बाद खिलता है अर्थात् शारीरिक दृष्टि से भी रात्रिभोजन कुपथ्य है ।

रात्रिभोजन - सर्व सामान्य दृष्टि में -

रात्रिभोजन के त्याग से शरीररक्षा और आत्मरक्षा दोनों होती है ।

तन - मन - आत्मा और प्रत्येक दृष्टि से रात्रिभोजन भयंकर हानिकर्ता है - यह सभी के लिए स्वानुभव सिद्ध विषय बन गया है ।

चिडिया, पोपट, कौआ, कबुतर आदि पक्षी भी सूर्यास्त के बाद भोजन का त्याग कर अपनें अपनें स्थान में चले जाते है । रात्रि में चाहे जितना प्रकाश हो तो भी उडते नहीं है - भोजन नहीं करते है ।

काल की दृष्टि से भी रात्रि का काल अधिकांशत : पापाचरण का काल है - भोगी भोग के पाप में व चोर, चोरी के पाप में पागल होते है । रात्रि में घूमने वाले उल्लू आदि पक्षी भी अपना भक्ष्य रात्रि में ही ढूंढते है ।

पता नहीं आज का मानव, मानव हैं या नर पिशाच ? आज वह पूरानी मान्यता को भूल गया है - जीवन टिकाने के लिए आहार है बारबार खाने के लिए जीवन नहीं है ।

लाईट के चाहे जितने प्रकाश में भी अमूक सूक्ष्म जीव तो दिखाई नहीं देते है ।

दया समो न य धम्मो, अन्नं समं नत्थि उत्तमं दाणं ।
सच्चसमा न य कित्ति, सीलसमो नत्थि सिंगारो ॥

अर्थात् - दया के समान उत्तम धर्म नहीं है - अन्न जैसा उत्तम दान नहीं है । सत्य के समान दूसरी कोई कीर्ति नहीं है और शील के समान कोई शणगार नहीं है ।

नरक के जीवों के दुःख का सामान्य वर्णन :-

नरक पृथ्वी सात है । वे पृथ्वियाँ, जहाँ हम रहते है उसके नीचे नीचे अधोलोक में आई हुई है । नरक पृथ्वी में रहने वाले उन जीवों को नारक कहते हैं । नारक जीवों को अनंत - अनंत वेदना - महावेदनाएँ होती है । उन वेदनाओं का वर्णन करने में चौदह पूर्वधर और केवलज्ञानी भी समर्थ नहीं है । उन वेदनाओं की लेश मात्र आंशिक रूपरेखा यहाँ दी जा रही है। (नरक गति में पडनें वाले दुःखों का वर्णन पढकर, नरक गति में ले जाने

वाले महारंभ, महापरिग्रह, मांस - मदिरा भक्षण आदि पापों के त्याग के लिए कटिबद्ध बनों, यही एक शुभाभिलाषा है ।

नारक जीवों का गति, जाति शरीर अंगोपांग, शब्द, कर्म आदि समस्त जीवन पर्यंत निरंतर अशुभ ही रहता है । उन जीवों की लेश्या, शरीर, वेदना, विक्रिया और वहा के पुद्गल के परिणाम हमेशा अशुभ ही होते है ।

नारक जीवों का शरीर - क्षेत्र के प्रभाव से तथा अशुभ नामकर्म के उदय से नारक जीवों के हाथ, पैर आदि अंग, अंगुली आदि उपांग संस्थान (शरीर की आकृति), स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, अगुरुलघु, बंधन, गति आदि सभी अत्यंत ही अशुभ होते हैं, जिसे कोई देखना भी पसंद न करें ।

हाथ - पैर आदि अवयव प्रमाण रहित व बेडोल होते है । पक्षी के पंख काट दिए जाय, और उन पंखों को उतार दे, उसी समय पक्षी की जो आकृति दिखाई देती हैं, उससे भी अधिक भयानक और विमत्स शरीर होता है । पेट की आंतें शरीर से बाहर लटकती रहती है ।

ऊंट के शरीर अठारह वक्रताएँ होती हैं, उसके समान हुंडक संस्थान वाला शरीर होता है और आकृति से भी रौद्र, क्रूर, करुण और भयोत्पादक होता है । उसका समस्त शरीर अशुचि से लिप्त होता है ।

पहली नरक की अपेक्षा दूसरी - तीसरी आदि नरक में तो इससे भी अधिक खराब शरीर होता है ।

नरक की भूमि :- जहाँ देखो वहाँ बलगम, पेशाब और विष्ठा बिखरी हुई होती है । जहाँ देखो वहाँ खून, चर्बी रस्सी आदि अशुचि पदार्थ पडे होते है । जहाँ मात्र मुर्दे (Dead Body) रखें जाते है, ऐसे श्मशान की तरह स्थान - स्थान पर मांस, हड्डियाँ, चमडें तथा दांत आदि के ढेर तथा खून - मवाद आदि की नदियाँ बहती रहती है । इतना ही नहीं, कुत्ता, बिल्ली, सियार, नेवला, सर्प, चुहा, हाथी, घोडा, गाय, मनुष्य आदि के सड रहे मुर्दे दुर्गंध फैला रहे होते है । सड़ान की उस दुर्गंध को सहन करना मनुष्य के लिए आसान

नहीं है । अरे ! वहा रहे दुर्गंधी ढेर में से एक ही परमाणु यदि मनुष्यलोक में बम्बई - कलकता जैसे घनी आबादी वाले शहर में लाकर रख दिया जाय तो उस शहर के सभी लोग खत्म हो जाय एक भी व्यक्ति जिंदा नहीं रहे । मनुष्य तो क्या कुत्तें - बिल्ली - चुहे जैसे प्राणी भी जिंदा नहीं रह सकते।

भोपाल के गेस - रीसन अथवा रासायनिक शस्त्र अथवा अणुबंब से भी अनेक गुणी भयंकर ताकत उस दुर्गंधी एक कण में रही हुई है ।

वहाँ की भूमि करवत के समान कर्कश होती है । उस भूमि का स्पर्श भी अत्यंत दुःखदायी होता है ।

कमरतोड वेदनाओं से त्रस्त बनें नारक जीव पत्थर की शिलाओं को तोड दे और कान के पर्दे को फाड डाले ऐसी चीसें करते रहते है । मानों समस्त आकाश आक्रंद नहीं कर रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है । रोम - राजि विकस्वरित हो जाती है ! हृदय ठंडा पड जाय, शरीर कांप उठे और रक्त भी बहना बंद हो जाय, ऐसी करुण चीसें वे सतत करते रहते है... आंसु तो मानों सूखते ही नहीं है ।

ओ माँ ! मर गया !! ओ बाप रे ! सहन नहीं होता हैं । हे भाई ! बचाओं! मुझ पर महरबानी करो, मेरा बध न करो ! इत्यादि अनेक आजीजी भरी प्रार्थनाएँ परमाधामी जीवों के पास करते है ! दीन - हीन और रंक बनकर निरंतर तीव्र करुण विलाप करते है ।

निरंतर बहनें वाले आंसुओं से व्याप्त नेत्रवालें और गाढ वेदना से त्रस्त बनें नारक जीवों के आक्रंद को सुनकर अच्छे अच्छे बलवान् व्यक्ति का देह भी ढीला पड जाता है ।

उस नरक भूमि में काली अमावस्या की अंधेरी रात से भी अति भयानक अति भीषण और गाढ अंधकार होता हैं, वहा कोई खिडकी (window) या वेंटीलेशन Ventilation नहीं है ।

नीम की जडों से भी अनेक गुणी कडवी चीजों से भी अनेक गुणी कडवाहट वहाँ की भूमि में होती है ।

नारक जीवों की चाल भी गधे व ऊंट की तरह अत्यंत श्रम जनक होती है। तपें हुए लोहें की अत्यंत लाल प्लेटों से अनेक गुणी उस भूमि की उष्णता, उस दुःख में वृद्धि करती है।

मनुष्य लोक में आग बरसतें सूर्य की भयंकर गर्मी से भी अतिशय उष्ण स्पर्श नरक में होता है। वहाँ बिच्छु के डंक से भी अत्यधिक डंक की पीडा नारक जीवों को सतत होती रहती है।

तत्त्वार्थसूत्र की टीका में क्षेत्र संबंधी १० प्रकार की वेदनाए बतलाई हैं-

(१) **ठंडी की वेदनाः** माघ मास की रात्रि हो ठंडा पवन बह रहा हो, ऐसे समय में वस्त्र रहित किसी दरिद्री मनुष्य को हिमालय पर्वत पर ठंडें जल से स्नान करने की सजा की जाय, उस समय उस जीव को जो पीडा होती हैं उससे अनंतगुणी शीत वेदना का अनुभव नारक जीव को होता है। शीत वेदना ग्रस्त नारक जीव को मनुष्य लोक में लाकर बर्फ की पाट पर सूला दिया जाय तो उसे सिगडी अथवा हीटर वाली रुम में बैठने से जो अनुभव होता है, वैसा अनुभव हो जाय और उसे शांति से नींद आ जाय।

(२) **गर्मी की वेदनाः** गर्मी के दिन हो, आकाश के मध्य में रहा सूर्य अंगारें बरसा रहा हो, धरती पर पैर न रख सके, ऐसी गर्मी हो, ऐसी गर्मी में अग्नि की ज्वालाओं के पास पित्त की व्याधि वाले मनुष्य को बैठा दिया जाय और उसे जिस वेदना का अनुभव हो, उस से अनंत गुणी वेदना नारक जीव को होती है, ऐसे नारक जीव को वहाँ से उठाकर पलाश के पुष्प के समान अत्यंत लाल अंगारों के बीच रख दिया जाय अथवा लोहें को गलाने वाली टाटा अथवा मल्होत्रा की भट्टी में रखा जाय तो भी उन नारक जीवों को चंदन के विलेपन जैसी ठंडक का अनुभव हो सकता हैं और उन्हें क्षण भर में गाढ निद्रा आ सकती है।

(३) **भूख की वेदना** विश्व की समस्त वस्तुओं को खा जाय तो भी उनकी भूख शांत न हो ऐसी उनकी भूख की वेदना होती है।...अर्थात् उनकी भूख वैसी ही बनी रहती है।

(४) **प्यास की वेदना** भी उन्हें अत्यंत तीव्र होती है। समस्त समुद्रों का जल पी जाय तो भी वह प्यास शांत न हो ऐसी उनकी प्यास की पीडा होती है।

(५) **खुजली की पीडा** भी उन्हें इतनी तीव्र होती हैं कि छूरी से खुजलानें की उन्हें इच्छा हो जाती है। संपूर्ण शरीर में खुजली की पीडा सतत बनी रहती है।

(६) **परतंत्रता** - पराधीनता के कारण नारक जीव, परमाधामी देवों को अत्यंत ही करुण स्वर से आजीजी करते रहते है।

(७) **ज्वर** - ताप ऐसा होता है कि उनका शरीर हमेंशा तपा रहता है अर्थात् अपनें तापमान से अनंतगुणा ताप उन्हें हमेंशा जिंदगी पर्यंत रहता है। परमाधामी देव उन पर अग्नि की वर्षा करते है। उस अग्नि से बचने के लिए नारक जीव गुफा में जाते है, परंतु वहा भी पर्वत की बडी शिलाओं के गिरनें से उनके सभी अंग चूर्ण चूर्ण हो जाते है। वे जहाँ आराम करने के लिए जाते है, वहाँ दुःख का प्रमाण अत्यधिक बढ जाता है। छट्ठी व सातवी नरक के जीवों को हमेंशा ५६८९९५८४ रोग प्रगट रूप से होते है।

(८) **दाह की वेदना** से त्रस्त बनें नारक जीव ठंडक के लिए जहाँ - तहाँ भटकते है, परंतु वहा ठंडक कहाँ से मिले ?

(९-१०) उन्हें **भय और शोक** तो इतना अधिक होता है कि वे सतत कांपते रहते है। उनके आंसुओ की धारा सतत बहती रहती है, वे सतत आंक्रद करते रहते है।

वहाँ की पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति का स्पर्श भी नारक जीवों को अत्यंत दुःखदायी होता है।

जिस प्रकार मनुष्य लोक में एक गली का कुत्ता दूसरी गली के कुत्तें को देखकर भोंकते है...घूर कर के देखते हैं, उसी प्रकार नारक जीव भी परस्पर कोध से एक दूसरे के सामने घूरकर देखते है... झगडते है - मारते है - छेदन करते है और दुःख देते है, क्योंकि उन्हें आजन्म वैर होता है। भालें, तलवार,

बाण तथा हाथ पैर व दांत के प्रहार से एक दूसरे के अंगोपांग छेद डालते है और कत्लखानें मे कटे हुए अंगोपांग वाले पशुओं की तरह तडफते है ।

परमाधामीकृत वेदना :- तीसरी नरक तक नरक में दुःख देने वाले १५ प्रकार के परमाधामी देव होते है वे नारक जीवों को विविध प्रकार का दुःख देते है ।

नारक जीव की उत्पत्ति को जानकर वे गर्जना करते हुए चारों ओर से दोडकर वहाँ आ जाते है और बोलते है - अरे ! अरे ! इस पापी को जल्दी मारो ! छेदो ! भेदो...। निष्ठुर हृदय वाले वे भाले, तलवार, बाण आदि से उनके टूकडे - टूकडे करके उन्हें कुंभी (कोठी जैसा स्थान, जिसका मुह छोटा और पेट बडा होता है) में से बाहर निकालते है ।

इस प्रकार बाहर निकालते समय वह नारक जीव अत्यंत आक्रंद करता है, फिर भी परमाधामी उसे शूली पर चढाता है । शूली ऊपर से काटें के ढेर पर पछाडता है और धधकती हुई वज्र - अग्नि की चिता में फेंकता है। आकाश में ऊपर ले जाकर उल्टे मस्तक से पछाडता है । नीचे गिरते समय वज्रमय सूईयों से उसे बिंध लेते है । गदा आदि से उसे मारते है । अरे ! सपूर्ण शरीर के छोटें छोटें टूकडें कर देते है (उनके शरीर की रचना ही इस प्रकार की होती है कि चाहें जितने टूकडे हो जाय फिर भी पारे की तरह वे वापस जूड जाते है परंतु उन्हें अपरंपार वेदना होती है) दूसरे देव उनके पेट और हृदय को फाड देते है, उनमें से आंते, चर्बी, मांस आदि बारंबार बाहर निकाल कर उन नारक जीवों को बतलाते है । त्रिशूल, भाला, शूल तथा शूली पर उन्हें पिरो देते है । जाज्वल्यमान अग्नि में जलाते है । अंगोपांग तोड डालते है । जंघा, स्कंध, हाथ, पैर आदि अवयवों के टूकडें टूकडें कर देते है । कई परमाराधामी उन्हें बडे बडे चुल्हें पर कढाई में अत्यंत गर्म रेती में जिंदी मछलियों की तरह भून लेते है । शरीर के टूकडें कर गर्म तेल में भुजीए की तरह तलते है । भट्ठी में धनें, सिंग आदि की तरह परमाधामी देव उन नारक जीवों को भट्ठी से अनंत गुणी तपी रेती में भूंजते है ।

चर्बी, मांस, मवाद, हड्डी आदि से भयंकर व उकलते हुए लाक्षारस के प्रवाह वाली, अत्यंत खार वाली और अत्यंत गर्म पानी वाली नदी में नारक जीवों को डूबा देते हैं, चलाते है । तपी हुई लोहे की नाव में बिठाते है । एक - दूसरे के पास एक - दूसरे की चमडी छिलवाते है और स्वयं करवत से निर्दयतापूर्वक उन्हें फाडते है ।

इस प्रकार उन जीवों को पछाडा जाय, कापा जाय, तला जाय, छेदा जाय, भेदा जाय, जलाया जाय, सेका जाय, तोडा जाय, पिघलाया जाय तो भी पाप के उदय से पुनः पारे के रस की तरह पूर्वावस्था में आ जाते है ।

परमाधामी देव उन जीवों को पूर्व के पाप याद कराकर उन्हें शिक्षा देते है । परस्त्री लंपट और विषयासक्त जीवो को तांबें की तपी हुई पूतलियों का आलिंगन कराते है ।

पूर्व भव में मौज से रात्रि भोजन करने वाले, जीभ के टेस्ट Taste के पीछे अभक्ष्य भक्षण करने वाले तथा रसना में आसक्त बने नारक जीवों के मुंह में परमाधामी चिंटिया भर कर मुंह सी लेते है और उनके मुह में भयंकर सर्प, चींटी तथा विष्ठा से अनंत गुणी अशुभ और दुर्गंध वाली वस्तुए डालते है ।

विविध वेदनाओं से तडफते हुए नारक जीवों के शरीर में से चमडी मांस आदि निकालकर अग्नि में पकाकर उन्हीं के मुंह में बलात्कार से डालते है। उसी का खून उसी को पिलाता है । वज्र की जाल में डालते है । लोहे की पाइप से पीटते है ! उल्टे मस्तक लटका कर नीचे भयंकर अग्नि सुलगाते है !

बाघ - सिंह आदि की रचना कर पंजे आदि के प्रहार से पीडा पहुँचाते है । आँखे बाहर निकालते है । मस्तक छिल देते है । तपा हुआ सिसा पिलाते है । लोहें के घन से प्रहार करते है ।

घाव ऊपर नमक छिडकते है । घाणी में पीलाते है । कान काट देते है। हाथ - पैर फाड देते है । छाती जला देते है । नाक काट लेते है । खाने के

लिए मरे हुए जानवरों के कलेवर खिलाते है। वे दीन जीव चारों ओर रक्षण ढूंढते है, परंतु उनका कोई सहायक नहीं होता है।

नारक जीवों को जब कुंभी में पकाते है, तब ५०० - ५०० योजन उछलते हैं और पुनः पृथ्वी पर गिरते है।

नीचे नीचे नरक में दुःख पीडा - त्रास अनुक्रम से तीव्र, अतितीव्र और अतितीव्रतर होता है। रात - दिन दुःख से पीडित नारक एक श्वास भी सुखपूर्वक नहीं ले सकते। उनके ललाट पर केवल दुःख ही लिखा होता है। उस दुःखसे पीडित आत्माएँ दुःख से कंटाल कर मरना चाहते है, परंतु आयुष्य की पूर्णाहूति पूर्व मर भी नहीं सकते।

जैन ग्रंथो के आधार पर नरक के दुःखों का सामान्य वर्णन किया।

अब जैनेतर ग्रंथ के आधार पर थोडा निरीक्षण करें। जैनेतर ग्रंथ में भी अनेक स्थलों पर नारक जीवों के दुःख का वर्णन देखने को मिलता है। उसमें भी विशेष कर गरुड पुराण में विशेष ध्यान दिया गया है। उनमें से थोडा सा यहा लिखते है।

'अनेक प्रकार के भ्रमित चित्त वाले, मोहजाल में फंसे हुए और काम भोग में आसक्त आत्माएँ अपवित्र नरक में जाती है।'- श्रीमद् भगवद्गीता।

इस लोक में जो राजवंशी, राजपुरुष और पाखंडी धर्म रूपी सेतु को तोड डालते है, वे मरकर नरक में - वैतरणी नदी में जाते है। वैतरणी नदी में मर्यादा भ्रष्ट उन जीवों को मत्स्य भक्षण करते है। वे मरना चहते है, फिर भी मर नहीं पाते।

अपनें पूर्व भव के पापों को याद कर वे विष्टा, मूत्र, मवाद, रक्त, केश, नाखुन, हड्डी, मांस तथ चर्बी से भरपूर नदी में अत्यंत पीडाका अनुभव करते है। - श्रीमद् भागवत स्कंध ५ अ. २६

हे राजन्! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूनम, सूर्यसक्रांति आदि पर्व के दिनों मे तैल, स्त्री और मांस का जो आत्मा भोग करती है, वह यहाँ से मरकर मूत्र और विष्टा के भोजन वाली नरक भूमि में उत्पन्न होते है। (मात्र

जैनों में ही नहीं जैनेतर में अष्टमी - चतुर्दशी को पर्वतिथि गिनी गई है, उन पर्व दिनों में विशेष पाप त्याग और धर्म सेवन का विधान देखने को मिलता है। - श्रीविष्णुराण

लाभ की बुद्धि से जो प्राणी को मार डालते है और मांस के लिए धन देते है, वे पापात्माएँ रौरव (नरकावास का नाम) आदि स्थानों मे जाकर अनंत वेदना सहन करते है, अतः मांस का त्याग करना चहियें।

श्रीलंकावतार सूत्र (बौद्ध)

(१) नास्तिक (२) मर्यादा का भंग करने वाले (३) लोभी (४) विषय लंपट (५) पाखंडी (६) कृतघ्न - ये छ प्रकार के जीव मरकर नरक की पीडा सहन करते है।

जुआ, मांस, शराब, वेश्यागमन, शिकार, चोरी और परस्त्री गमन - ये सात व्यसन जीव को नरक में ले जाते है।

भूख प्यास से पीडित पापी नारक, नरक में रक्त की वैतरणी नदी का खून पीते है। महा भयंकर अत्यंत क्रूर यमदूत द्वारा मुद्गर गदा आदि के ताडन से उन नारकों के मुख में से निकला हुआ खून वे नारक पुनः पी जाते है।

हे गरुड! इस प्रकार पापी जीवों की पीडा अनेक प्रकार की है। सर्व शास्त्रों में कही गई पीडा का विस्तार पूर्वक वर्णन करने से क्या? अर्थात् चाहें जितना वर्णन करें तो भी वह कम ही है। श्रीगरुड पुराण

Typesetted by: Hansa Compographics, Bombay-400 006.

Printed at:
Meghart Colour Crafters, Bombay-400 013 ☎ 492 19 64